२१वीं सदी के युवा कथाकार में सांस्कृतिक चेतना

सुप्रिया सिंह
(शोधार्थी)
हिंदी एवं भाषा विज्ञान विभाग
रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर, (मध्य प्रदेश)

प्रत्येक नयी पीढ़ी अपने परिवेश के प्रति अधिक सजग और प्रतिक्रियाशील होती है। कोई भी नया लेखक अपने टटके अनुभवों को शब्द के संसार मे ंशामिल करना चाहता है। अपनी अभिव्यक्ति पर दूसरों के विचार जानना चाहता है। उसमें एक छटपटाहट या हस्तक्षेप करने की व्यग्रता होती है। यही फिर एक बार हुआ। उदय प्रकाश, संजीव, और अखिलेश के बाद युवा कथाकारों का हस्तक्षेप महसूस हुआ।

एकदम तकनीकी तौर पर तो युवा विमर्श प्रचलित नहीं हुआ या अंगीकार नहीं किया गया लेकिन हिन्दी कहानी से जुड़ी ज्यादातर चर्चाओं में युवता ने वर्चस्व स्थापित किया, इससे कई बार पिछली और पुरानी पीढ़ी को कष्ट भी हुआ। मौके का फायदा उठाते हुए पिछली पीढ़ी के एकाध लेखक कथागुरू बन गये। विडम्बना यह है कि नयी पीढ़ी ने उनकी गुरूता को इतिहास के हवाले कर दिया।

यह सन्तोष की बात रही कि पुराने और नए आलोचकों ने युवा कहानी पर ध्यान दिया। नामवर सिंह , मैनेजर पाण्डेय, विश्वनाथ त्रिपाठी से लेकर कृष्ण मोहन, वैभव सिंह, राहुल सिंह, पंकज पाराशर, आदि तक ने इन कहानियों पर कहा और लिखा।

समय सबके भ्रम दूर कर देता है। यही कारण है कि कहानीकारों की भीड़ में अब वे रचनाकार दिख रहे है, जो आश्वस्त करते है। और अब एक यक्ष प्रश्न ? क्या अब युवा कथाकारों का सम्यक मूल्यांकन होगा।

पिछली शताब्दी के अन्तिम दशक से अब तक युवता और नवता की घोषणा करते हुए अनेक कथाकारों ने अपनी–अपनी तरह से हस्तक्षेप किया है। इनमें वे अलग से पहचाने जा सकते हैं, जिन्होंने अपनी पहचान स्वयं अर्जित की है। वे अपनी रचनाशीलता के माध्यम से रचना में परिवर्तन की सूचना देते हुए एक नयी कहन को भी सामने रखने का काम किया है। साहित्य के बनने और बदलने की पहचान और समझ का काम अब पहले की तुलना में बहुत मुश्किल हो गया है। यह माना जाता था कि साहित्य में बदलाव की प्रक्रिया बहुत धीमी होती है और किसी परिवर्तन की सतह पर आने में समय लगता है लेकिन अब हालात बदल गए है। तकनीकी विकास और संचार क्रान्ति के कारण परिवर्तन की गति अब पहले से बहुत तेज हो गई है। हिन्दी की इक्कीसवीं सदी की आरम्भिक साहित्यिक सक्रियता इसी तरह की है। गत सदी को उत्तरार्द्ध की आर्थिक

उदारीकरण ग्लोबलाइजेशन, संचार क्रान्ति, मीडिया, विस्फोट आदि परिघटनाओं ने इसको दूर तक प्रभावित किया है।

२१वीं सदी के युवा कथाकारों में सांस्कृतिक चेतना की बात करे तो २१वीं सदी की चुनौतियॉ और सरोकार बीसवीं सदी से बिल्कुल अलग, एकदम नए हो गए हो, ऐसा सोचना तर्कसंगत नहीं होगा। कलेंण्डर की तिथियॉ वर्षवार तथा प्रतिमाह बदलती ही है, पुरानी पन्ना फटता है और नया आता है यह कालक्रम है। साहित्य की प्रवृत्तियाँ कालगणना के कलेण्डर के साथ नहीं बदलती, वे धीरे–धीरे विकास पाती है और क्रमशः ही उनका लोप होता है। यह साहित्य की सहज प्रक्रिया है, किसी भी भाषा का साहित्य इसका साक्ष्य है। पिछली शतीं के अन्तिम दो दशकों से हमारे देश में जो भूण्डलीय स्थितियाँ बनती चली गई, साहित्य की चिन्ता के केन्द्र में वही प्रमुखता से रूपायित हुई है।

वैश्विक गाँव– ग्लोबल विलेज की अवधारणा ने जो हमारा पश्चिमीकरण, अमेरिकीकरण किया उसका चित्रण और तीव्र प्रतिरोध साहित्य की प्रत्येक विधा मे बड़ी गहराई से विवेचित हुआ है। कथा साहित्य की प्रवृत्ति तात्कालिक समस्याओं को अधिक तीव्रता से पकड़ने की होती है, इसलिए उनमें अपने समय की चिन्ताएँ और प्रश्न अधिक गहनता से चित्रित विश्लेषित होते है, उपन्यास विकास के सन्दर्भ में पर्याप्त विरोधाभासी स्थिति रही है। कुछ समय पूर्व तक उपन्यास की प्रवृत्ति प्रमुखतः अतीतजीवी रही है।, वह अपने कथा–सूत्र सन्निकट के वर्तमान से न अपनाकर पीछे जाकर इतिहास में खोजता रहा है, जबकि कहानी की प्रवृत्ति, तात्कालिकता की रही है, अतः वह अपने समय में बहुत सार्थकता से हस्तक्षेप करती हुई अपने वर्तमान की प्रत्येक महत्तवपूर्ण घटना से मुठभेड़ कर समय के सवालों से जूझती रही है। उपन्यास में यह प्रवृत्ति बाद में आई।

इतिहास के कथा–सूत्र खोजते हुए भीष्म साहनी 'तमस' (1973) में भारत–पाक विभाजन की समस्या उठाते है और मय्यादास की माड़ी (1988) में प्रथम राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम 1857 से लेकर 1950 ई0 तक के समय को उपन्यास का कथ्य बनाते है। कामतानाथ अपने 'कालकथा' (2000) उपन्यास के दो खण्डों में स्वतंत्रता आन्दोलन को ही कथाकेन्द्र में रखते है। गिरिराज किशोर 'ढाईघर' (1991), पहला गिरमिटिया (2001) में स्वातंत्रय पूर्व के भारत को कथ्य बनाते है। इसी प्रकार असगर वजाहत के उपन्यास 'सात आसमान' (1996) में कम्पनी राज्य से प्रारम्भ कर आजादी के बाद तक के समय को तथा जगदीश चन्द्र भी 'नरककुण्ड में वास' (1994) आदि में, रवीन्द्र वर्मा (निन्यानवे)(1999), 'मैं अपनी झाँसी नहीं दूँगा', (2004) में कथा को वर्तमान से पीछे जाकर उठाते हैं। इससे कुछ पहले 20वीं सदी के आठवें दशक में हजारी प्रसाद द्विवेदी के 'पुर्ननवा' (1993) और 'अनाम दास का पोथा'(1976) तथा शिव प्रसाद सिंह के 'नीला चाँद' (1988) 'कुहरे में युद्ध' (1993), 'दिल्ली दूर है' (1993), वैश्वानर (1989) आदि में इतिहास पुराण जनश्रुति को ही उपन्यासों का विषय बनाया गया है।

पिछली शती के अन्तिम वर्षो और २१वीं सदी के प्रथम दशक में उपन्यास की इस अतीत–जीवी प्रकृति में बड़ा भारी परिवर्तन उपस्थित हुआ है कि उसने अतीत मोह से प्रायः अपना पल्ला झाड़कर वर्तमान पर अपनी चिन्ता

केन्द्रित की है हिन्दी उपन्यास के लिए यह एक बहुत बड़ा प्रस्थान बिन्दु है कि वह बहुत प्रखरता से अपने को वर्तमान से, बिलकुल सन्निकट के वर्तमान से जोड़कर कथ्य और कथा की आधार–भूमि खोजता है। यह प्रवृत्ति न केवल नई पीढ़ी के उपन्यासकारों मं प्राप्त होती है बल्कि पिछली पीढ़ी के वरिष्ठ उपन्यासकार भी अपने उपन्यासों की विषय–वस्तु (थीम) मुख्यतः सन्निकट वर्तमान से ग्रहण करते है।

२१वीं सदी के प्रारम्भ में चन्द्रकान्ता का बहुचर्चित उपन्यास 'कथा सतीसर' (2001) में कश्मीर की सांस्कृतिक और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखते हुए उसके अतीत और वर्तमान का बहुत सांगोपांग चित्रण इस रूप में किया गया कि पग–पग पर कश्मीरीयत का गहरा परिचय प्राप्त होता चलता है।

अलका सरावगी ने अपने उपन्यास में 'शेष कादम्बरी'(2001) उपन्यास जो बहुत सशक्त होते हुए भी पहले उपन्यास की यश छाया की पूरी तरह चर्चा में नही आ पाया, उसकी ओर कम ध्यान दिया गया। अपने इस दूसरे उपन्यास में भी अलका सरावगी मारवाड़ी समाज की पृष्ठभूमि की झलक दिखाई।

र्ष 2002 के उपन्यासों में हिन्दी का श्रेण्य (क्लासिक) श्रेणी (गौरवग्रन्थ) का उपन्यास ''काशी का अस्सी'' प्रकाशित हुआ यह उपन्यास हिन्दी उपन्यास के लिए एक नया प्रदर्श (मॉडल) रचता है, उपन्यास के पारम्परिक विधागत चरित्र को पूरी तरह तोड़ता हुआ, उसे नया रचता हुआ वस्तुतः कोई चुनौतीपूर्ण महत् कृति ही अपनी विधा के प्रचलित स्वरूप को तोड़ती हुई अपनी नई लीक स्थापित कर उस विधा को ही अभिनव बना देती है। अस्सी घाट का ग्लोबल गाँव का अंग बनने की प्रक्रिया, उदारीकरण और खुले बाजार की राजनीति आदि पर अपनी व्यंग्य शैली से मारक टिप्पियाँ देता लेखक इसे एक स्मरणीय कृति बना देती है।

''आवाँ'' की ख्याति प्राप्त लेखिका ''चित्रा मुद्गल का वृद्धावस्था की समस्या की गहरी संवेदना उकेरता उपन्यास ''गिलिगुडु'' इस कथ्य पर एक बहुत सशक्त कृति है।

रामधारी सिंह दिवाकर ने बिहार के संक्रमणकारी ग्रामीण समाज की नब्ज पकड़ने का काम किया है उनका 'टूटते दायरे'(2002) इसी ग्राम समाज की संस्कृति की झलक दिखाई देता है। मैत्रेयी पुष्पा का व्रज क्षेत्र और बुन्देलखण्ड के ग्रामीण समाज की झलक मिलती है 'इदन्नमम्' और चाक इनके श्रेष्ठ उदाहरण है नीरजा माधव का 'यमद्वीप' (2002) स्त्री विमर्श को उठाता शिखंडी (हिजड़े या किन्नर) समाज पर केन्द्रित है।

वर्ष 2003 में एस0आर0 हरनोट का 'हिडिम्ब' (2003) हिमांचल के जनजीवन पर केन्द्रित है। इस उपन्यास में हरनोट ने इस पर्वतीय अंचल के लोकजीवन और संस्कृति को बड़े चटख रंगों में चित्रित किया है।

भीमसेन त्यागी का 'जमीन' (2004) में प्रकाशित हुआ जमीन से जुड़ा हुआ उपन्यास है। 2005 के प्रकाशित उपन्यासों में नासिरा शर्मा के 'कुइयाँ जान' ज्ञान प्रकाश विवेक के ''दिल्ली दरवाजा'' शरद सिंह का 'पिछले पन्नें की औरतें' आदि है।

वर्ष 2006 में महुआ माँझी का 'मैं बोरिशाइल्ला' बांग्लादेश की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक स्थितियों का गम्भीर विवेचन करते हुए बांग्लादेश के जन्म की संघर्ष गाथा वहाँ के लोक जीवन में गहरे उतरकर की है। वर्ष 2007 के उपन्यासों में रवीन्द्र वर्माका 'दस बरस का भँवर' अशोक भौमिक का 'मोनालिसा हँस रही है' रवीन्द्र वर्मा का 'निन्यान्वे' तथा ''मै अपनी झाँसी नहीं दूँगा प्रकाशित हुआ।

वर्ष 2008 के उपन्यासों में काशीनाथ सिंह का 'रेहन पर रघ्घू' नासिरा शर्मा का 'जीरोरोड' (2008) मुख्यतः दुबई पर केन्द्रित है जिसमें एक ओर सांस्कृतिक विस्थापन (डॉयस्पोरा) की समस्या है। वर्ष 2008 में अनामिका के दो उपन्यास 'दस द्वारे का पींजरा' तथा ''तिनका तिनके पास आए। 'दस द्वारे का पिंजरा' में अनामिका ने मुजफ्फरपुर की जोगनिया कोठी और आधारशिला को केन्द्र में रखकर पंडिता रमाबाई, वेश्या ढेलाबाई जैसी प्रखर समाज–सुधारिका नारियों के स्त्री उत्थान के अथक प्रयत्नों का चित्रण किया था।

वर्ष 2009 में ममता कालिया का 'दुक्खम–सुक्खम्' मृदुला गर्ग का 'मिलजुलमन' प्रियवंद का 'छुट्टी के दिन का कोरस' पंकज विष्ट का 'पंख वाली नाव' आदि है। 2012 में काशीनाथ सिंह का 'महुआ चरित्र' गिरिराज किशोर का 'स्वर्णमृग', महुआ माजी का 'मरंग घोड़ा नीलकण्ठ हुआ' रजनी गुप्त का 'कुल जमा बीस' आदि युवा कथाकारों के रचनाओं में सर्वत्र व्याप्त सांस्कृतिक चेतना को प्रदर्शित करते है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. हिन्दी कहानी का युवा परिदृश्य –सुशील सिद्धार्थ
2. समकालीन कहानी : नया परिप्रेक्ष्य –डा0 पुष्पपाल सिंह
3. २१वी शती का हिन्दी उपन्यास –डा0पुष्प पाल सिंह